INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF HUMANITIES AND INTERDISCIPLINARY STUDIES
(Peer-reviewed, Refereed, Indexed & Open Access Journal)
DOI : 03.2021-11278686 ISSN : 2582-8568 IMPACT FACTOR : 7.560 (SJIF 2024)

महाजनपद युग में गणतंत्रवादी शासन व्यवस्था का विश्लेषण

(Analysis of Republican Governance System in Mahajanpada Era)

Dr. Shakti Prasad Tiwari
Assitant Professor,
Choudhary Charan Singh College,
Rajpur Rohtas (Bihar, India)
E-mail: shaktihz@gmail.com

DOI No. 03.2021-11278686 **DOI Link ::** https://doi-ds.org/doilink/04.2024-42187274/IRJHIS2404040

सारांश :

प्राचीन भारतीय गण को ऐसी शासकीय सत्ता नहीं मानते थे कि जिसमें राजा मात्र अस्थायी काल के लिए अनुपस्थित हो। इसके अलावा वे सत्ता के इन दोनों स्वरूपों– राजतंत्र तथा गणतंत्र को यह इंगित करते हुए एक दूसरे के मुकाबले पर रखते थे कि अपने–अपने देशों में सर्वोच्च सत्ता के निर्वाहकों के नाते राजा और गण अनन्य सत्ता का उपभोग करते हैं। भारतीय स्रोतों में गणों अथवा संघों के समूहों को स्वतंत्र अथवा स्वायत्त कहा गया है। इन संघों में राजा की सत्ता नहीं थी–उनका नेता चुना जाता था। पाणिनि ने कई प्रकार के संघों का उल्लेख किया है– शस्त्र बल पर जीवित रहने वाले संघ, अर्थात् सैन्य संघ, तथा ऐसे संघ, जिनमें राज्यत्व का विकास अत्युच्च स्तर पर पहुँच चुका था।बौद्ध साहित्यों में उल्लेखित दस गणराज्यों में शाक्यों का राज्य बड़ा था जिसकी राजधानी कपिलवस्तु थी। गौतम बुद्ध का सम्बन्ध इसी गणराज्य से था । महत्त्व के दृश्टिकोण से वैशाली अर्थात लिच्छवि गणराज्य था जहां से गणराज्य की परम्परा प्रारम्भ हुई यहाँ का न्याय व्यवस्था काफी अच्छी थीआरोपों की जाँच की जाती थी तत्पश्चात फैसला सुनाया जाता था।इसी तरह अन्य गणराज्य की भी अपनी महत्ता थी ।

कूटशब्द : *स्वायत्त, आसन्नपन्नायक,अनुश्रावण, अविभक्त, अराजतंत्रीय*

प्रस्तावना :

गणतंत्र प्रणालीजिसे संघात्मक प्रणाली भी कहते थे जिसमे प्रबंध पंचायती ढंग पर भी होता था। एक व्यक्ति विशेष के हाथ में इनका शासन नहीं होता था अपितु 'गण' अथवा समूह के हाथों द्वारा इसका संचालन होता था।गण की एक परिषद् होती थी जिसमें एक मुख्य या सभापति होता था जिसे राजा भी कहते थे। राजा शब्द सम्भवतः सम्मानार्थ में प्रयुक्त होता था। कई बार ऐसा भी देखा गया है कि कई गण राज्य किसी शक्तिशाली शत्रु का युद्ध में समाना करने के लिये एक विशाल 'संघ' बना लेते थे। गण शब्द के कितने ही अर्थ हैं। वैदिक काल में यह कबीले का समानार्थक था। कालांतर में गण तथा संघ विकास के विभिन्न स्तरों पर अराजतंत्रीय संघों के सूचक बन गये। पाणिनि (पांचवीं–चौथी शताब्दी ई0पू0) ने कई प्रकार के संघों का उल्लेख किया है– शस्त्र बल पर जीवित रहने वाले संघ, अर्थात् सैन्य संघ, तथा ऐसे संघ, जिनमें राज्यत्व का विकास

अत्युच्च स्तर पर पहुँच चुका था। बौद्ध ग्रंथों में राज्य के दोनों प्रकारों, अर्थात् एक व्यक्ति द्वारा शासित राजतंत्रों और गण द्वारा शासित प्रदेशों में अंतर किया गया है। जहाँ प्रथमोक्त प्रकार के राज्यों में सभी शक्ति एक ही व्यक्ति के हाथों में केन्द्रित होती थी, वहाँ गणों में दस लोगों द्वारा लिये गये निर्णय का भी बीस द्वारा पुनरीक्षण किया जा सकता था, अर्थात् वह बहुमत की राय पर निर्भर करता था।

बौद्ध साहित्य में दस गणराज्यों का उल्लेख है, जो निम्नलिखित है– 1. कपिलवस्तु के शाक्य, 2. रामग्राम के कोलिय, 3. मिथिला के विदेह, 4. कुशीनारा के मल्ल, 5. पावा के मल्ल, 6. पिप्पलिवन के मोरिय, 7. अल्लकप्प के बुलि, 8. सुंसुमार पर्वत के भग्ग, 9. केसपुत्त के कालाम, और 10. वैशाली के लिच्छवि।

शाक्यों का राज्य बड़ा ही महत्वपूर्ण था क्योंकि वहाँ गौतम बुद्ध का जन्म हुआ था। ये लोग जाति से क्षत्रिय थे। बौद्ध ग्रन्थों में शाक्यों का सम्बन्ध इच्वाकुवंश से जोड़ा गया है। सुमंगलविलासिनी[1] और महावंश[2] की कथाओं मे शाक्यों को राजा ओवकाक या इक्ष्वाकु का वंशज बताया गया है। 'महावस्तु' में शाक्यों को आदित्य बन्धु कहा गया हैं।[3] विभिन्न साधनों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि ये लोग प्राचीन सूर्यवंशी क्षत्रिय थे। शाक्यगण की राजधानी कपिलवस्तु थी। इसके अन्तर्गत सामगाभ, उलुम्पा, देवदह, चानुमा, सववर, सीलावती और खोमदुस्स आदि प्रसिद्ध नगर थे।[4]

शाक्य गणराज्य में गणतांत्रिक शासन प्रणाली प्रचलित थी। उसका कोई वंशानक्रमानुगत राजा नहीं होता था। राज्य के प्रधान अथवा मुखिया को राजा कहा जाता था। बौद्ध–काल के अन्य अनेक राज्यों में प्रत्येक कुल के मुखिया को 'राजा' कहते थे लिच्छवियों में यही व्यवस्था थी। पर शाक्यों में राजा केवल एक ही होता था, हर मुखिया एवं सरदार को राजा नहीं कहा जाता था। यही कारण है कि जहाँ बौद्ध–साहित्य में अनेक स्थलों पर उनके नाम के साथ 'राजा' का विशेषण आता है, वहाँ अन्यत्र उनके जीवन–काल में ही अनेक छोटे भतीजे–भद्दिय को 'राजा' कहा गया है और उन्हें केवल 'शाक्य शुद्धोदन' लिखा गया है।[5]शाक्य–राज्य में एक परिषद् थी जिसका अधिवेशन कपिलवस्तु के संयागार में हुआ करता था। 'महावस्तु' में शाक्यपरिषद् के सदस्यों की संख्या 500 लिखी गयी है। 'ललितविस्तर' के अनुसार भी शाक्यों की परिषद् के सदस्यों की संख्या पाँच सौ थी।[6] सभी प्रकार के प्रस्ताव राजनीतिक, सामाजिक आदि परिषद् में उपस्थित किये जाते थे। शाक्य राज्य एक प्रकार का श्रेणीतंत्र (एरिस्टोक्रेसी) था, जिसमें कुलीन घराने के मुखिया सब काम करते थे। इन पाँच सौ सदस्यों की नियुक्ति किस प्रकार होती थी, इसके सम्बन्ध में कोई निर्देश बौद्ध–साहित्य में उपलब्ध नहीं है।

लिच्छवी गणराज्य की राजधानी वैशाली थी। प्राचीन भारतीय नगरों में वैशाली का बहुत महत्व था। वाल्मीकि रामायण के अनुसार इसका संस्थापक राजा इक्ष्वाकु का पुत्र विशाल था, जिसके कारण इसका नाम वैशाली पड़ा था।[7] शाक्यों की तरह लिच्छवी लोग भी क्षत्रिय थे। जैन साहित्य के अनुसार भी लिच्छवी लोग क्षत्रिय वर्ग के थे।[8] लिच्छवी राज्य की शासन प्रणाली गणतांत्रिक पद्धति पर आधारित थी। वहाँ वंशक्रमानुगत राजा नहीं होता था और राज्य की सारी शक्ति जनता में निहित थी। कौटिल्य ने लिच्छवियों को राजशब्दोपजीवी संघ कहा है।[9] लिच्छवियों में प्रत्येक अपने को राजा समझता था। 'ललितविस्तर' के अनुसार वहाँ का प्रत्येक व्यक्ति अपने को राज्य का राजा समझता था और सब समान थे। लिच्छवी राज्य की राजसभा के अधिवेशन संस्थागार में होते थे। इस सभा में कितने लिच्छवी राजा सम्मिलित होते थे, इसका निर्देश बौद्ध–साहित्य में मिलता है। 'एकपण्ण' जातक के अनुसार वैशाली के राजाओं की संख्या 7707 थी। साथ ही, राजाओं के साथ

शासन करने वाले उपराजा, सेनापति और भाण्डागारिकों की भी संख्या इतनी ही है।कुछ विद्वानों के अनुसार, ये 7707 शासक परिवार थे और कुछ इन्हें लिच्छवी राज्य में शासन करने वाली अलग श्रेणी के रूप में मानते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि ये लोग कुलीन परिवार के थे और इन्हीं लोगों में शासन सत्ता निहित थी। ये लोग वैशाली के संस्थागार में एकत्र होकर राज्य का सब काम करते थे। इसे कुलीनतंत्र भी कहा जा सकता है। इन राजाओं का राज्याभिषेक भी होता था।[10] राज्य में एक पदनायक होता था, जिसकी नियुक्ति निर्वाचन द्वारा होती थी।[11] सम्भवतः यह नायक ही लिच्छवी राजाओं में प्रधान एवं राष्ट्रपति का कार्य करता था।

लिच्छवी राज्य प्रतिनिधि सभा को संस्थागार कहा जाता था। यह राज्य की व्यवस्थापिका सभा होती थी। परिषद् की कार्यवाही प्रारम्भ होने के लिए सदस्यों की कम–से–कम संख्या निश्चित थी, जिसे गणपूर्ति कहते थे। सभा–भवन में सदस्यों के बैठने के लिए आसनों का प्रबन्ध आसन्नपन्नायक नाम एक पदाधिकारी करता था। परिषद् में प्रस्ताव को प्रतिज्ञा कहा जाता था, इसे नियमपूर्वक रखने को स्थापन और इसे पढ़ने को ज्ञपित कहा जाता था, इसे नियमपूर्वक रखने को स्थापन और इसे पढ़ने को ज्ञप्ति कहा जाता था। प्रतिज्ञा की ऊँचे स्वर में घोषणा को अनुश्रावण और उसके कई बार पढ़ने को ज्ञप्तिद्वितीय, ज्ञप्तितृतीय आदि कहते थे। प्रस्ताव के ऊपर वाद–विवाद होता था और तब फिर उस पर मत लिया जाता था, जिसे छन्द (स्वतंत्र विचार) कहा जाता था। अनुपस्थित सदस्य लिखकर अपना मत दे सकते थे। मत प्रदर्शित करने के लिए सदस्यों को शलाका दी जाती थी और इन्हें एकत्र करने वाले को शलाकाग्राहक कहते थे। मत गुप्त रखे जाते थे।परिषद् में निर्णय संभवतः सर्वसम्मति से लिया जाता था, यदि ऐसा सम्भव नहीं हुआ तो बहुमत के आधार पर निर्णय हो जाता था। बहुमत से लिए गये निर्णय को भूपिष्ठ कहा जाता था। प्रतिज्ञा परिषद् में स्वीकृत हो जाने पर संघकर्म कहलाती थी। कार्यवाही की वैधानिकता निम्नांकित बातों पर आधारित थी–गणपूर्ति, आधिकारिक सदस्यों की उपस्थिति, प्रतिज्ञा की नियमित ज्ञप्ति, शलाकाओं का संग्रह परिषद् द्वारा कार्यवाही की सम्पुष्टि। संस्थागार में नियम–अनुशासन पर विशेष ध्यान दिया जाता था। परिषद् का भी कार्यालय होता था और इसमें विश्वासपात्र लिपिक परिषद् की कार्यवाही लिखते थे एवं उसे सुरक्षित रखते थे। गण के मुख्य अधिकारी राजा, उपराजा, सेनापति और भाण्डागारिक होते थे।[12] इसका शासन गणमुख्य परिषद् के निश्चय के अनुसार अधिकारियों की सहायता से होता था। प्रत्येक युवक सैनिक का काम जानता था और सेना का प्रमुख अधिकारी सेनापति होता था। अर्थ विभाग का मुख्य अधिकारी भाण्डागारिक होता था। सेनापति सैन्य संचालन के साथ ही साथ एक मंत्री के रूप में भी कार्य करता था। वह समस्त आमात्यों में प्रमुख समझा जाता था इनके अतिरिक्त हिरण्यक, सारथी आदि कर्मचारियों का निर्देश बौद्ध–साहित्य में मिलता है।

लिच्छवी राज्य की न्याय–व्यवस्था बड़ी अच्छी थी। अभियुक्त को पहले 'विनिश्चयामात्य' के सम्मुख उपस्थित किया जाता था और वह अभियुक्त पर लगाये गये आरोपों की जाँच करता था। निरपराध होने पर वह उसे छोड़ भी सकता था, अन्यथा वह उसे 'वोहारिक' अथवा व्यावहारिक के सम्मुख उपस्थित करता था। निरपराध होने पर वह भी उसे छोड़ सकता था। परन्तु दण्ड देने का उसे अधिकार नहीं था। पुनः व्यवहारिक उसे सुतधर या सूत्रधर नामक के कर्मचारी के सम्मुख उपस्थित करता था। सूत्रधर अभियुक्त को छोड़ सकता था। किन्तु अभियुक्त को अपराधी पाने पर वह उसे अट्ठकुलक नामक कर्मचारी के सम्मुख पेश करता था। उसके बाद अभियुक्त को क्रमशः सेनापति, उपराजा और राजा के सम्मुख उपस्थित किया जाता था। अभियुक्त

को दण्ड तभी मिल सकता था जब वह अपराध पूर्णतया सिद्ध हो जाय। मुकदमों का 'रेकार्ड' रखा जाता था और इस तरह के 'रेकार्ड' को 'पवेणीपुस्तक' कहते थे। इस कार्य के लिए 'पवेणीपोत्थक' कहते थे। इस कार्य के लिए 'पवेणीपोत्थक' नामक अधिकारी होता था। यहाँ की शासन–प्रणाली की प्रशंसा भगवान बुद्ध ने भी की थी और कहा जाता है कि ऐसी व्यवस्था प्राचीन यूनान तक में नहीं थी।

विदेह और लिच्छवी संयुक्त रूप से संवज्जि कहलाते थे और इनके अन्तर्गत आठ गणराज्य थे। इन्होंने आपस में मिलकर एक संयुक्त संगठन कायम किया था और वही वृज्जि संघ कहलाता था। वृज्जियों ने एक संयुक्त काउन्सिल का निर्माण किया था जिसमें 18 सदस्य थे, जिनमें 9 लिच्छवी और 9 मल्ल थे। इन सदस्यों को 'राजा' कहा गया है। संघ–शासन में परामर्श देने के लिए अष्टकुलक नामक एक संस्था थी, जिसमें गण के प्रमुख आठ कुलों के प्रतिनिधि भाग लेते थे। कई गणों के मिलने से संघ बनता था। संघ के सभी सदस्यों के स्थान और अधिकार बराबर होते थे। वृज्जि और मल्ल बड़े ही प्रभावशाली संघ थे। सबसे ऊपर जो न्यायालय होता था उसे भी अष्टकुलक कहते थे। के0पी0 जायसवाल के अनुसार यह आठ सदस्यों की न्यायकारी काउन्सिल थी; परन्तु रीज डेविड्स ने इसे आठ वर्गों या उपजातियों के प्रतिनिधि के रूप में माना है। संघ–शासन–प्रणाली का अपना नियम था और उससे ही संघ–शासन संचालित होता था। संघ के अन्तर्गत गणराज्य के सदस्य प्रशासन मण्डल का चुनाव करते थे। गणराज्यों का शासन संघ की सभा द्वारा होता था। सभा में सदस्यों की संख्या गणराज्य की जनसंख्या के अनुसार होती थी।[13]

मगध–मौर्य कालों में गणों और संघों के नाम से विख्यात गणतांत्रिक संघों ने बहुत महत्व की भूमिका निबाही है। इन संघों ने राजतंत्रों के विरूद्ध दृढ़ संघर्ष चलाया और कितने ही अवसरों पर शानदार विजयें भी प्राप्त कीं। बौद्ध ग्रन्थों में तो कुछ गणराज्यों की महाजनपदों तक में गणना की गयी है।

मौर्य काल में सबसे विकसित गण तथा संघ वे थे, जिनमें अविभक्त सत्ता का प्रयोग करने वाला कोई राजा न था, अर्थात् वे गणतंत्र थे, चाहे उनके यहाँ गणतांत्रिक शासन के स्वरूप सदा एक जैसे ही नहीं होते थे। इन गणराज्यों का सामान्य लक्षण था अविभक्त सत्ता रखने वाले वंशागत राजा का न होना। राज्य का प्रमुख सामान्यतः गण द्वारा निर्वाचित किया जाता था और आवश्यक होने पर हटाया भी जा सकता था। बौद्ध ग्रंथ 'चीवरवस्तु' में उत्तरी भारत के सबसे शक्तिशाली गणराज्यों में एक, लिच्छवि गण का बड़ा रोचक वर्णन आता है। इसमें बताया गया है कि गण के नेता की मृत्यु होने पर नये नेता का निर्वाचन किस प्रकार होता था। इसकी मुख्य शर्त यह थी कि अभ्यर्थी को योग्य होना चाहिए। गण अभ्यर्थी की नियुक्ति इस घोषणा के साथ करता था कि यदि नेता अपने कार्यों का गण से अनुमोदन नहीं करवा पायेगा, तो गण उसे हटाने का अधिकार रखता है। गण के नेता को मुख्यतः कार्यकारी अधिकार ही प्राप्त होते थे–विधायनी शक्ति सत्ता के सर्वोच्च निकाय के नाते गण के अधिकार क्षेत्र में आती थी। इस प्रकार यह देखा जाता है कि गण को अराजतंत्रीय शासन प्रणाली का राज्य और राज्य सत्ता का सर्वोच्च निकाय भी माना जाता था।

भगवान गौतम बुद्ध के पिता राजा शुद्धोधन भी इसी प्रकार के गणतंत्र के सम्मानित राजा थे। आचार्य कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र के ग्यारहवें अधिकरण में दो प्रकार के गणतंत्रों का उल्लेख इस प्रकार किया है–

'कम्बोज और सुराष्ट्र (गुजरात) देषों में उत्पन्न होने वाले क्षत्रिय श्रेणी के ये लोग वार्ता और शस्त्र के द्वारा अपनी जीविका करते हैं।'[14] अर्थात् पारिभाषिक शब्दों में प्राचीन भारतीय अर्थशास्त्रियों ने कृषि, गोरक्षा,

वाणिज्य (व्यापार) और कुसीद (ब्याज) को वार्ता शब्द से सम्बोधित किया है।'कृषि, पशुपालन और वाणिज्य को वार्ता कहते हैं।'[15]

प्रथम प्राचीन भारतीय आर्थिक विचारक मनु ने वैश्यधर्म का कर्तव्य निर्धारण करते हुये इस प्रकार लिखा है– "पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेदों का अध्ययन करना, व्यापार करना, ब्याज पर धन देना एवं कृषि करना वैश्यों के कार्य है।"[16]

प्राचीन भारतीय अर्थशास्त्रियों एवं आर्थिक विचारकों ने वार्ता का मानवीय जीवन की सुरक्षा और जगत् के व्यवहार को चलाने के लिये अत्यन्त महत्व निर्धारित किया है।[17]

इस प्रकार एक प्रकार के क्षत्रिय लोग पूर्व वर्णित वार्ता और शस्त्रों से अपनी जीविका चलाते थे और दूसरे इस प्रकार केवल नामधारी शब्द सौष्ठव के राजा थे। जैसे– वार्ताशस्त्रोप जीविन के अतिरिक्त 'लिच्छिविक, व्रजिक, मल्लक, मद्रक, कुकुर, कुरू और पांचाल आदि देशों के केवल नाममात्र को राजा कहलाने वाले पुरुषों के भी संघ होते हैं।'[18]

आचार्य कौटिल्य के अर्थशास्त्र का अध्ययन करने पर यह अच्छी प्रकार विदित होता है कि उसके युग में भी दो प्रकार के गणराज्य थे वार्ता और शस्त्र अर्थात् ये गणराज्य के राजा कृषि, पशु और व्यापार एवं युद्धों में दक्ष होते थे। दूसरी प्रकार के गणराज्य को सम्मानार्थ भी राजशब्दोपजीवी माना गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि राजा शब्द प्राचीन काल में सम्मान सूचक था और प्रजाजन इस प्रकार के गणतंत्रीय राजाओं का उनके कार्यों के कारण उन्हें अत्यन्त श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे एवं पुकारते रहे होंगे। गणतंत्र के दोनों प्रकार के राजा प्रजावर्ग का विशेष ध्यान रखते होंगे, जिससे प्रजावर्ग भी उनके कार्यो के कारण उन दोनों प्रकार के राजाओं का आदर करता था।

इन राज्यों में से कुछ का संविधान तो राज्यतंत्रीय और कुछ का लोकतंत्रीय अथवा उच्च कुल तंत्रीय था। उस समय चार प्रमुख और प्रभावशाली राजवंश थे–मगध में हर्यक, कौसल में इक्ष्वाकु, वत्स (कौशाम्बी) में पौरव और अवन्ति में प्रद्योत।

पाली साहित्य से ज्ञात होता है कि बुद्ध के समय में दस मुख्य गणराज्य थे– शाक्य (कपिलवस्तु–नेपाल की तराई में), भग्ग (सुंसुमार पर्वत–सम्भवतया आधुनिक मिर्जापुर जिले में), बुलि (सम्भवतया शाहाबाद और मुजफ्फरपुर के बीच), कोलिय (ये शाक्यों के पूर्व में थे और दक्षिण की ओर इन का राज्य सरयू तक विस्तृत था; उत्तर में शाक्यों और कोलियों के राज्य की सीमा विभाजित करती हुई रोहिणी नदी थी), मल्ल (इनकी राजधानी कुशीनारा थी जिसे गोरखपुर में स्थित वर्तमान कसिया से मिलाया जाता है), मोरिय या मार्य (इनकी राजधानी पिप्पलीवन थी जो शायद गोरखपुर जिले में अविस्थत थी), लिच्छवि (इनकी राजधानी वैशाली थी जिसे मुजफ्फरपुर जिले में स्थित मसाढ़ से मिलाया जाता है) आदि।

राजतंत्रों में इस समय कोसल, मगध, वत्स और अवन्ति के राज्य प्रमुख थे। इन राज्यों में मगध सबसे शक्तिशाली हुआ। बुद्ध के समय मगध का अधिपति बिम्बिसार था जिसने महाभारत–कालीन जरासन्ध के वृहदथ–वंश का राज्य समाप्त हो गया।

श्री हवलदार त्रिपाठी ने अपने 'बौद्धधर्म और विहार' ग्रन्थ में दो प्रकार की राजप्रणालियों का ही वर्णन किया है–

"भगवान् बुद्ध के समय में मुख्यतया दो ही राज्य थे। इनमें एक का नाम 'वज्जिसंघ' था, जिसकी राजधानी वैशाली थी तथा दूसरे का नाम मगध था, जिसकी राजधानी 'राजगृह' में थी। यहाँ कुछ प्राचीन छोटे–छोटे राज्य भी थे, जिनका महत्व अधिक न था। इन दो राज्यों में शासन की प्रक्रियायें दो थीं। वैशाली गणतंत्रात्मक राज्य था और मगध एक तंत्र सर्वासत्तात्मक। वैशाली से सटे पश्चिम की ओर पावा तथा कुशीनारा नाम के दो गणतंत्रात्मक राज्य थे।"[19]

षोडस जनपदों की शासन प्रणालियों में सर्वोत्तम शासन प्रणाली संघ शासन प्रणाली ही थी। इसमें विचार स्वातंत्र्य ओर संगठन की दृष्टि से अत्यधिक एकता थी एवं प्रजा के योग्य जन ही समस्त प्रजा के कष्टों को संघ शासन में एक जनप्रतिनिधि एवं सदस्य के रूप में रख सकते थे। एक व्यक्ति के रूप में नहीं अपितु राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से निर्धारित योग्यता वाले जनसमूह द्वारा चुने हुये संघ की शक्ति को वर्धन करने वाले व्यक्ति ही इस संघ शासन में रहते थे।

निष्कर्ष :

भगवान् गौतम बुद्ध अपने समय में इन दोनों शासन प्रणालियों में वज्जियों की संघ शासन प्रणाली की सही व्यवस्था को देख चुके थे। अतः यही शासन प्रणाली संगठन, एकता और स्थिरता के लिये सर्वोत्तम समझकर भगवान् बुद्ध ने अपने बौद्ध संघ के लिये भी इसी प्रणाली को अपनाया। बौद्ध संघ भगवान् बुद्ध के निर्माण से पूर्व इस संघ शासन प्रणाली के आधार पर ही सुचारू रूप से चलता रहा। भगवान् बुद्ध अपने शिष्यों को संघ में संगठित रहने का उपदेश देते रहे। "संघ की शरण में जाता हूँ" (संघं शरणं गच्छामि) संघ शासन को आधुनिक युग में भी राष्ट्र के हित एवं विकास के लिये सर्वोत्तम समझा जा रहा है। आज के विकासशील देश अपनी प्रगति और औद्योगिक विकास के लिए संघ शासन प्रणाली को श्रेष्ठ गिनते जा रहे हैं। जनतंत्र की रक्षा और राष्ट्रीय एकता के लिये हमारी भारत सरकार ने गणतंत्र–जनतंत्र प्रणाली को उत्तम समझ कर ही अपनाया है। अतः यह सिद्ध होता है कि कलियुग में संघ में ही शक्ति मानी जाती है और उसी के आधार पर विभिन्न प्रकार के संघों का जन्म हुआ है।

इस प्रकार षोडस महाजनपदों के वर्णन में उस युग में प्रचलित शासन प्रणालियों की चर्चा भी की जा चुकी है।[20] भगवान् बुद्ध के समय में ही बौद्धधर्म का सबसे अधिक प्रभाव और उनके जीवन के व्यवहारिक पक्ष की सर्वप्रथम अमिट छाप मगध के राजा बिम्बिसार पर पड़ी और भी राज्य थे किन्तु बुद्ध, धर्म और संघ की सेवा और आचार पक्षीय संगठन हेतु मगध के राजाओं ने ही प्रथम और स्थायी कार्य किया।

संदर्भ सूची :

1. Sumangala Vilasini, pt. I,pp 258-260
2. Mahavanso, edited by Geiger, pp.12.14
3. Maha Vastu, ii, p.303
4. Cambridge History of India, Vol, p.175
5. Rhys Davids : Buddhist India. p 19.
6. Lalitavis ara pp. 135-137
7. रामायण 47, 11–12

8. Jacobi : Kalpa Suttra, p.266

9. कौटिल्य अर्थशास्त्र 11.1

10. Fausbell : The Jataka, Vol. iv, p.143

11. Rockhill : Life of the Buddha, p.62

12. J.P. Sharma- Republics in Ancient India

13. Yogendra Mishra-Early History of Vaisali

14. कौटिल्य 11 अधिकरण 1 अध्याय 5 श्लोक

15. कौटिल्य 1 अधिकरण 4 अध्याय 1 श्लोक

16. मनु 1 अध्याय 90 श्लोक

17. प्राचीन भारतीय आर्थिक विचारक, पृ0 95,142,197

18. कौटिल्य 11 अधिकरण 1 अध्याय 6 श्लोक

19. श्री हवलदार त्रिपाठी सह्रदय–बौद्ध धर्म और विहार, पृ0 22

20. आर. सी. मजूमदार, प्राचीन भारत, पृ0 75